

शून्य (0) अंक की मीमांसा

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी

शोध सार-

अंकों का शब्दात्मक शरीर और संख्यात्मक शरीर सर्वप्रथम भारतवर्ष की धरा पर ऋषियों के हृदय में अवतरित हुआ था। इसीलिए वे अंककृद् हैं। भारत ब्रह्म और माया का चिन्तक देश है। ब्रह्मविद्या के अन्वेषण के क्रम में अंकों की उत्पत्ति हुई है ऐसा हम साधिकार कह सकते हैं; क्योंकि भारतवर्ष की आर्षविद्या के उत्स ग्रन्थ वेद हैं। शून्य (0) अंक की उत्पत्ति सर्वविद्यामूलक 'वेद' से हुई है। वेद में शून्य का प्रयोग उपलब्ध है। वहाँ किसी अनुपलब्ध वस्तु को चाहने वाले के लिए 'शून्यैषी' का प्रयोग किया गया है। मन्त्र है- "शून्यैषी निरुक्ते याजगन्धोत्तिष्ठारते प्रपत मेह संस्थाः"। 'आकाश' और 'समुद्र' वेदान्त ज्ञान में उदाहरण स्वरूप अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रयुक्त हैं। आकाश अनादि है; अनन्त है, महाबिलम् है। समुद्र की तरंगें माया की तरह तरंगायित होती हैं। आकाश को 'शून्य' कहा गया है। यहीं से अंकों में शून्य का समावेश होता है। स्वतन्त्ररूप से शून्य महत्वहीन था और है; परन्तु महान् भारतीय ऋषियों एवं गणितज्ञों की दृष्टि में वह उत्पादक अंक है। सम्पूर्ण विश्व में ऋषियों द्वारा अन्वेषित अंकों की जानकारी धीरे-धीरे पहुँची। ऋषि वैज्ञानिकों ने शून्य, नौ अंक तथा स्थानमान का अन्वेषण ईसा के पूर्व वेद एवं वेदांगकाल में कर लिया था। कालान्तर में भारतवर्ष ने ही अन्य समस्त विश्व को शून्य का ज्ञान प्रदान किया था, जिसके फलस्वरूप वे गणना करना सीखें तथा गणितीय विधा में निपुण हो सके थे। जो आकाश को जानता है वह शून्य को जानता है। ऋषि वैज्ञानिकों के लिए आकाश शून्य, वृत्त या बिन्दु था। पृथ्वी क्षैतिज रेखा थी।

'शून्य' वैदिक ज्ञान-विज्ञान की कुक्षी से अवतरित होकर वैश्विक गणित प्रक्रिया को जन्म देता है। शून्य(0) अंक का स्थान भारतीय अंकों में सर्वोत्कृष्ट है। इसके पर्याय हैं- खम, गगन, आकाश, अम्बर, अभ्र, वियत, व्योम, अन्तरिक्ष, नभ, पूर्णम्, रन्ध्र, विष्णुपाद, जलधरपथ आदि। मानव जीवन व्यवहार में वैदिक गणित हो, आधुनिक गणित हो अथवा ज्योतिष का गणित हो, सर्वत्र शून्य (0) का प्रयोग अवश्यमेव होता है। यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगा कि शून्य से ही समस्त अंक निकलते हैं। प्रस्तुत शोध आलेख भारतीय अंकों का रीढ़ 'शून्य (0)' पर आधारित है। शून्य का सामान्य अर्थ- आकाश, रिक्त, कुछ शेष नहीं आदि से ग्रहण किया जाता है। वस्तुतः शून्य पूर्ण और अपूर्ण दोनों का द्योतक है। यह दर्शन और गणित दोनों का ही वर्ण्य विषय है। शून्य एक ऐसा बिन्दु है जिससे सिन्धु बनता है। निःसन्देह शून्य की अवधारणा एवं उत्पत्ति गणित, खगोल और विज्ञान जगत् के लिए एक ईश्वरीय वरदान लेकर पृथ्वी पर आयी। ईसा से पूर्ववर्ती मुनि 'पाणिनि' के पूर्ववर्ती या समकालीन शाकल्यऋषि ने वृत्त के 360 अंशों की चर्चा की है और 'ज्या' का मान बतलाया है। इससे यह सिद्ध होता है कि शून्य अंक भारतवर्ष में बहुत

पहले ज्ञात हो चुका था। शून्य के ज्ञान के बिना वृत्त और उसके अंश की परिकल्पना नहीं की जा सकती थी। शून्य एक निष्क्रिय गणित प्रक्रिया है जो अंकों की अनन्त सक्रियता को रूपायित करता है। यह आकाश की तरह व्यापक और उत्पादक है। शून्य का आरम्भिक स्वरूप बिन्दु की तरह या लघुवृत्त की तरह रहा है। इनमें से पहले कौन सा रूप प्रचलित था यह कहना कठिन है। आकाश को यदि चित्र रूप में उपनिबद्ध करना हो तो उसे शून्यांक से ही किया जा सकता है। शून्य विश्व की आकृति का परिचायक है चाहे उसका स्वरूप बिन्दु की तरह हो या वृत्त की तरह।

कूट शब्द- शून्य, अंकोत्पत्ति, भारतीय अंक, रोमन अंक, शून्यैषी, पूर्ववर्ती, क्षितिज, ज्या, संस्कृति।

भूमिका -

‘शून्य आकाश का वाचक है और रेखा पृथ्वी का’ शून्य और रेखा अर्थात् आकाश और पृथ्वी के महामिलन से ही अंकों की उत्पत्ति हुई है। आकाश और क्षितिज के नौ प्रकार के सम्मेलन से नौ अंकों (0,1,2,3,4,5,6,7,8,9) की उत्पत्ति हुई। देश और काल के महामिलन से द्वैतरूपी अंकों की उत्पत्ति हुई है। ब्राह्मी, खरोष्ठी एवं देवनागरी आदि सभी लिपियों में अंकों की स्थिति शून्य और रेखा से ही प्रकट हुई है। शून्य जहाँ एक ओर रिक्तता को दर्शाता है वहीं दूसरी ओर सर्वोच्च अंक परार्ध को भी अंकित करता है। शून्य में से निकलकर शून्य ही बचता है और यदि किसी बड़े से बड़े अंक को शून्य से गुणा किया जाय तो भी शून्य ही बचता है। शून्य अंक की अपनी एक अलग विशेषता है। दार्शनिक दृष्टिकोण से अनन्त आकाश की यात्रा कर परमगति को प्रदान करने वाला भी शून्य ही है। मानव जब शून्यता को प्राप्त करता है तो वह परमपद की प्राप्ति की ओर अग्रसर होने लगता है। अतः शून्य अलौकिक है।

आज सम्पूर्ण भारतवर्ष में अंग्रेजी अंकों का प्रचलन इतने तीव्र वेग से बढ़ा है कि प्राचीन भारतीय अंकों का धीरे-धीरे प्रयोग कम से कम होने लगा है। आजकल इन अंग्रेजी अंकों को कुछ लोग भ्रमवश ‘रोमन अंक’ नाम से भी अभिहित कर रहे हैं। किसी भी गणितीय प्रक्रिया और गणितीय चिन्ह को सर्वथा विस्मृत होने और लुप्त होने में दो सौ से तीन सौ वर्ष लगते हैं। अतः यदि अंग्रेजी अंकों के प्रसार और प्रयोग की यही गति और स्थिति बनी रही तो भारतीय अंकों के विलुप्त होने का खतरा उभर पड़ेगा। व्यवहार में ऐसा इसलिए हो रहा है; क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा के बढ़ते प्रभाव के कारण ज्यादातर लोग उन्हीं अंकों को जानते हैं जिन्हें वे कान्वेन्टों या स्कूलों में सीखते हैं। आज बैंकों, वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों तथा छापखाने एवं आफसेट मशीन के प्रयोगों में अंग्रेजी अंकों की उपलब्धता आसान है। यहाँ तक की पादटिप्पणियों एवं वेदमंत्रों की संख्या लिखते समय भी अंग्रेजी अंकों का ही प्रयोग किया जा रहा है। यह स्थिति अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है। अंग्रेजी अंकों को रोमन अंक भी कहना न्यायसंगत नहीं है; क्योंकि पाँचवीं शताब्दी में रोम पराजित होकर कंस्तुताइन राजा के कार्यकाल में अपना प्राचीन स्वरूप बोध विस्मृत कर चुका है। पाँचवीं शताब्दी से पूर्व का रोम और उसके बाद के रोम में सभ्यतागत अनेक बदलाव आ चुके हैं।

मानव जीवन में सांसारिक अथवा आध्यात्मिक दृष्टिकोण से शून्य का विशेष महत्व है। अंकों की महत्ता की बात करें, तो भी शून्य का ज्ञान परमावश्यक है।

विषय प्रतिपादन-

प्राचीन ग्रन्थों एवं साहित्य शास्त्र में शून्य-

वेद में शून्य का प्रयोग उपलब्ध है। वहाँ किसी अनुपलब्ध वस्तु को चाहने वाले के लिए शून्यैषी का प्रयोग किया गया है। मन्त्र इस प्रकार है-

शून्यैषी निर्रते याजगन्धोत्तिष्ठाराते प्रपत मेह संस्थाः¹॥

ग्रीक में इसका प्रतिरूप केन्योस Kenyos शब्द प्राप्त होता है। इससे इसकी व्यापकता प्रमाणित है। अरबी भाषा के सिफ्र शब्द के द्वारा शून्य के खाली अर्थ का अरबी अनुवाद किया गया है। इस सिफ्र से इंग्लिश का 'Zero' शब्द विकसित है।

वेद के पश्चात् महाभारत आदि में अभाव या खाली अर्थ में इस शब्द का नियमित रूप से प्रयोग प्राप्त होता है। आगे चलकर बौद्ध दर्शन के 'शून्यवाद' नामक सम्प्रदाय में एक विशेष पारिभाषिक अर्थ में इसका प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इसके प्रवर्तक महान् दार्शनिक नागार्जुन ने शून्यता को सभी दृष्टियों में सर्वश्रेष्ठ बताया।² इनके अनुसार इसका मौलिक अर्थ सन् भी नहीं असत् भी नहीं, दोनों भी नहीं, दोनों का प्रतिषेध भी नहीं- इस प्रकार चारों कोटियों से विनिर्मुक्त तत्त्व है; क्योंकि विश्व के किसी पदार्थ की व्याख्या इन चारों में से किसी भी कोटि में कर पाना सम्भव नहीं है। यह दर्शन शून्यता का अर्थ चारों कोटियों से विनिर्मुक्त किसी पाँचवें तत्त्व को नहीं बताता, अपितु इन्हीं चारों की अव्याख्येयता, अनिर्वचनीयता को सूचित करता है। नागार्जुन ने कहा है कि जो लोग इस शून्यता को कोई पाँचवें तरह का तत्त्व समझने लगते हैं, उन्हें समझाने के लिये हमारे पास कोई दवाई नहीं है।³ इस प्रकार 'शून्यता' जगत् के पदार्थों को चारों कोटियों से विनिर्मुक्त सिद्ध करती है।

शून्य शब्द के सबसे प्राचीन अर्थ का सकी व्युत्पत्ति से अनुमान किया जा सकता है। यद्यपि गणवार्तिककरा ने अपनी व्युत्पत्ति से इसके मौलिक अर्थ को मिटा दिया है। उन्होंने इस शब्द को किसी-किसी प्रकार सिद्ध करने के आवेश में इसे कुत्ते अर्थवाले श्वन् शब्द से हित अर्थ में यत् प्रत्यय द्वारा सिद्ध किया है।⁴ यहाँ पूछा जा सकता है कि एकान्त या खाली स्थान से कुत्ते का क्या हित सिद्ध होता है!

शून्य शब्द की सही व्युत्पत्ति के संकेत वैदिक साहित्य से प्राप्त होते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों में सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहा है कि पहले असत् ही था, वह सत् हुआ तथा अण्ड बना। वह साल भर तक बढ़ता रहा तथा उसके बाद फूट कर रजत वर्ण की पृथिवी तथा सुवर्ण-वर्ण के द्युलोक के रूप में विभक्त हो गया।⁵ इससे दूर-दूर तक खाली स्थान आकाश परिव्याप्त हो गया।

इस बढ़ने तथा सूजने आदि अर्थ में 'शून' शब्द का प्रयोग वेदों में प्राप्त है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार यह शब्द सूजने अर्थ वाली श्वि धातु से भूतकाल में क्त प्रत्यय होकर निर्मित होता है। वास्तव में उस अण्ड के इस सूजे हुए खाली स्थान का नाम ही शून्य अथवा आकाश है। इन वर्णनों को मिलाकर देखने से इसकी यही व्याख्या सर्वाधिक सुसंगत प्रतीत होती है।

इससे स्पष्ट है कि शून्य के विकास के लिये मूलतः आकाश के स्वरूप से प्रेरणा प्राप्त हुई है। अतः

यहाँ प्रथम न्याय-वैशेषिक में परिकल्पित आकाश की अवधारणा को संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं। वैशेषिक सूत्र में आकाश के विषय में उस समय प्रचलित दो प्रकार के मत प्रस्तुत किये गए हैं, जो इस प्रकार हैं-

प्रथम मत के अनुसार आकाश शून्यात्मक या अभाव स्वरूप है। यह इस स्वरूप वाला होकर कमरे से निष्क्रमण, उसके अन्दर प्रवेशन इत्यादि क्रियाएँ कराने का हेतु होता है।⁶ यह स्थिति स्पर्श वाले भाव द्रव्यों से भिन्न है। पृथिवी आदि भाव पदार्थ जगह घेरते हैं तथा वे अपनी जगह पर किसी को आने नहीं देते। इससे विपरीत स्थिति वाला होने से आकाश अभावस्वरूप है।⁷ 'खाली स्थान', 'कुछ नहीं' की प्रतीति ही आकाश की प्रतीति है।

न्याय-वैशेषिक के द्वितीय सिद्धान्त मत के अनुसार आकाश एक भाव पदार्थ है। पर वह छोटे-छोटे जगह घेरने वाले अणुओं से निर्मित नहीं, अपितु विभु है। इस प्रकार महत्परिमाण वाला होने से अनन्त है। किसी के भी महत्त्व की परिमाप जिन उपायों या उपकरणों से हो सकती है, वह उनसे भी कहीं बढ़ कर है। इस प्रकार वह अगम्य तथा अपरिभाष्य है। यह स्थिति अनन्त (Infinity) के इस आधुनिक वर्णन से तुलनीय है कि अनन्त ऐसा बड़े से बड़ा है जो उस बड़े से भी बड़ा है, जितना बड़े से बड़ा हम सोच सकें।⁸ अनन्त की यह अवधारणा अणु की सूक्ष्मता की अनन्तता का दूसरा छोर है।⁹

दर्शन-जगत् में इस प्रकार शून्य को भी दो प्रकार से समझने की परम्परा रही है।

साहित्य-शास्त्र में शून्य

साहित्य-शास्त्र में भी इस शब्द के दोनों अर्थों में प्रयोग प्राप्त होते हैं। प्रथम अथर्ववेद के शून्यैषी (= शून्य को चाहने वाला) जैसे शब्द 'अभाव' अर्थ को रख कर भी 'कुछ है' की प्रतीति कराते हैं। द्वितीय अर्थ का वर्णन करते हुए उपनिषद् का एक सुन्दर मन्त्र इस प्रकार है-

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥¹⁰

अर्थात् यह ऐसा पूर्ण है जिस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल लेने पर भी पूर्ण ही बच जाता है। अनन्त का इससे बढ़िया वर्णन और क्या हो सकता है!!

भागवत के एक रोचक श्लोक में दोनों अर्थों वाले शून्य का एक साथ प्रयोग देखने को मिलता है-

यत्तद् ब्रह्म परं सूक्ष्मम् अशून्यं शून्यकल्पितम्।

अर्थात् वह परम सूक्ष्म ब्रह्म शून्य नहीं है, फिर भी शून्य के रूप में प्रकल्पित है। यहाँ पहले शून्य का अर्थ अभाव तथा दूसरे शून्य का अनन्त अर्थ है। इस प्रकार 'वह ब्रह्म शून्य या अभावस्वरूप नहीं, फिर भी शून्य या अनन्तस्वरूप है, यह इसका सूक्ष्म अर्थ है।

शून्य के स्वरूप-

शून्य के दो स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं-

1. शून्य अभावस्वरूप है। पर यह ऐसा नहीं जो हमारे ज्ञान का विषय न बन सके। वास्तव में वह बोध्य है, व्याख्येय है। वह विविध कार्यों का कारण भी बन सकता है। जैसे-न्याय में घट कार्य का दण्ड,

चक्र, चीवर, कुलाल के साथ 'वर्षा के अभाव' को भी कारण माना जाता है। यह वर्षाऽभाव न्यायनय में वर्षा के अभावस्वरूप होकर भी एक पदार्थ है। वेदान्त सिद्धान्त में यह वर्षा से भिन्न कोई भावान्तर स्वरूप है। दोनों ही स्थितियों में यह विविध संक्रियाओं का निष्पादक माना जाता है।

2. शून्य सर्वथा अपरिमेय या अव्याख्येय है। वह सभी कोटियों से रहित है। हम अपने दैनिक जीवन में जिन-जिन विमाओं को जानते हैं, उनसे वह भिन्न है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि वह किसी चतुर्थ विमा के आकार को प्राप्त कर सके। यह एक ओर अणुता के आनन्त्य को रखता है, जिसे परमाल्प कहते हैं। दूसरी ओर महत्त्व के आनन्त्य को रखने से परममहान् है। जिसका न्याय में एक उदाहरण आकाश है। दोनों ही दशाओं में यह सर्वथा अगम्य एवं अबोध्य है। इस पर कोई क्रिया नहीं हो सकती। अथवा यों कहें कि इस पर की गई किसी संक्रिया से परिणाम में कोई भिन्नता नहीं आती। इसके लिये छोटा, बड़ा या कम, अधिक जैसे शब्दों के प्रयोग का कोई अर्थ नहीं है। दर्शनशास्त्र में इस 'अनन्त से जगत् उत्पत्ति', इसमें विलय' इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग केवल समझने का उपायमात्र है। वस्तुतः उसमें ऐसा कुछ नहीं होता।

गणित-शास्त्र में शून्य

यह निरूपण बहुत रोचक है कि गणित-शास्त्र में आकाश के स्वरूप से प्रेरणा प्राप्त करते हुए गणितीय संक्रियाओं द्वारा दोनों प्रकार के शून्य को प्राप्त किया गया है। इसीलिये महावीर आदि विद्वानों ने आकाश के पर्यायवाचक शब्दों को शून्य का पर्याय निरूपित किया है।¹¹

संख्या-लेखन हेतु प्रथम प्रकार के शून्य का उपयोग-

गणित-शास्त्र में यह शून्य अभावस्वरूप होकर भी संख्या के अन्तर्गत है। इसका अलग नाम तथा प्रतीक चिन्ह है। यह ठीक उसी प्रकार का है, जैसे न्याय में अभाव असत् स्वरूप होकर भी पदार्थ है। गणित में शून्य का प्रतीक अन्य किसी संख्या के अभाव की सूचना देता है। फिर भी वह अन्य संख्याओं के समान अपने से दाहिने या बाईं ओर की संख्याओं के मान को बदलने की क्षमता रखता है। 1 की दशगुणज तथा उसके वर्ग, घन आदि संख्याओं के लेखन में 1 से दाहिने ओर क्रमशः शून्यों की संख्या बढ़ती जाती है तथा ये शून्य क्रमशः 1 के दशगुणित तथा इसके उत्तरोत्तर वर्धमान मान की सूचना देते हैं। इसी प्रकार 1 से 10 से तथा उसके वर्ग, घन आदि से विभाजित संख्याओं के लेखन में 1 से बाईं ओर दशमलव बिन्दु एवं 1 के बीच क्रमशः शून्यों की संख्या बढ़ती जाती है तथा ये क्रमशः 1 के उत्तरोत्तर ह्रासमान मान को प्रकट करते हैं।

गणित-शास्त्र में इस प्रकार का संख्या-लेखन दशगुणोत्तर पद्धति के आधार पर विकसित है। इस पद्धति से लिखे गए प्रत्येक अंक का दशगुणित स्थानीय मान होता है। इसमें उक्त विशेषताओं वाले शून्य का तथा इसके एक सुनिश्चित प्रतीक का प्रयोग अनिवार्य है। गणित के लिये शून्य चिन्ह को प्रकट करते हुए सबसे पहला प्रयोग प्रायः 200 ई. पू. में विरचित पिंग छन्दः सूत्र में प्राप्त हुआ है।¹² इस प्रकार इस समय इसका कोई प्रतीक चिन्ह अवश्य विकसित हो गया था। इससे इस समय स्थानीय मान पद्धति द्वारा संख्या-

लेखन की सूचना प्राप्त होती है। इस पद्धति का स्पष्ट संकेत ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी के योग-सूत्र व्यास-भाष्य के एक सुन्दर विवरण से प्राप्त होता है। वहाँ कहा है कि एक ही रेखा सौ के स्थान पर 100 का दस के स्थान पर 10 का तथा वही 1 के स्थान पर 1 अर्थ प्रदान करती है¹³।

इस पद्धति से लेखन का अस्पष्ट संकेत ई.पू. 8वीं शताब्दी के निरुक्तकार यास्क के 'दश' के निर्वचन से प्राप्त होता है। यह इस प्रकार है-

दश दस्ता-निरुक्त 3.10

अर्थात् दस नाम इसलिये है; क्योंकि इस संख्या तक संख्या-लेखन के लिये अंक परिपूर्ण हो जाते हैं। इसके पश्चात् किसी भी बड़ी से बड़ी संख्या-लेखन के लिये इन्हीं अंकों की पुनरावृत्ति की जाती है¹⁴। यह स्थिति केवल स्थानीय मान पर आधारित लेखन-पद्धति में ही सम्भव है। अन्य किसी भी पद्धति में इससे अधिक अंकों की अनिवार्य आवश्यकता होती है। इससे यह भी प्रकट है कि निरुक्तकार ने 9 के अलावा शून्य को भी अतिरिक्त अंक के रूप में स्वीकार किया है।

वेद में आकाश या अवकाश से परिपूर्ण गोल छिद्र के लिये 'ख' का प्रयोग प्राप्त है¹⁵। इस आधार पर आगे चल कर इस अतिरिक्त अंक के लिये गोलाकार प्रतीक विकसित हुआ।

शून्य से अंकोत्पत्ति एवं महत्व-

अंकों का शब्दात्मक शरीर और संख्यात्मक शरीर पहली बार भारतवर्ष की धरती पर ऋषियों के हृदय में अवतरित हुआ। इसीलिए वे अंककृद् हैं। यह देश ब्रह्म और माया का चिन्तक देश है। ब्रह्मविद्या के अन्वेषण के क्रम में अंकों की उत्पत्ति हुयी है ऐसा हम साधिकार कह सकते हैं; क्योंकि भारतवर्ष की आर्षविद्या के उत्स ग्रन्थ वेद हैं। 'आकाश' और 'समुद्र' वेदान्तज्ञान में उदाहरण के तौर पर अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रयुक्त हैं। आकाश अनादि है; अनन्त है, महाबिलम् है। समुद्र की तरंगें माया की तरह तरंगायित होती हैं। आकाश को शून्य कहा गया है। यहीं से अंकों में शून्य का समावेश होता है। स्वतंत्ररूप से शून्य महत्त्वहीन था और है; परन्तु महान् भारतीय गणितज्ञों एवं ऋषियों की दृष्टि में वह उत्पादक अंक है।

एक	द्वि	त्रि	चतुः	पंच	षट्	सप्त	अष्ट	नव	शून्यम्
1	2	3	4	5	6	7	8	9	0

सम्पूर्ण विश्व में ऋषियों द्वारा अन्वेषित अंकों की जानकारी धीरे धीरे पहुँची। ऋषि वैज्ञानिकों ने शून्य, नौ अंक तथा स्थानमान का अन्वेषण ईसा के पूर्व वेद एवं वेदांककाल में कर लिया था। जो आकाश को जानता है वह शून्य को जानता है। ऋषियों ने वैदिक संहिताओं में अंकों की स्थिति को दर्शाया है। उनके लिए आकाश शून्य, वृत्त या बिन्दु था। पृथ्वी क्षैतिज रेखा थी।

शून्य से अंकोत्पत्ति-

शून्य का आरम्भिक स्वरूप बिन्दु की तरह या लघुवृत्त की तरह रहा है। इनमें से पहले कौन-सा रूप प्रचलित था यह कहना कठिन है। आकाश को यदि चित्र रूप में उपनिबद्ध करना हो तो उसे शून्यांक से ही किया जा सकता है। अतः प्रचलित लघुवृत्त (0) को ही शून्य मानें तो अंकों की उत्पत्ति निम्नलिखित रूप में कल्पित हो सकती है-

अंकों के निर्माण में शून्य, अर्धशून्य और रेखा का प्रयोग किया गया था। शून्य आकाश का वाचक है और रेखा क्षितिज का। आकाश और क्षितिज के नौ प्रकार के सम्मेलन से नौ अंकों की उत्पत्ति हुयी। देश और काल के महामिलन से द्वैतरूपी अंकों की उत्पत्ति हुयी है। ब्राह्मी, खरोष्ठी एवं देवनागरी आदि सभी लिपियों में अंकों की स्थिति शून्य और रेखा से ही प्रकट हुई है।

‘शून्य’ का महत्त्व –

निःसंदेह शून्य की अवधारणा एवं उत्पत्ति गणित, खगोल और विज्ञान जगत् के लिए एक ईश्वरीय वरदान लेकर पृथ्वी पर आयी। ईसा से पूर्ववर्तीमुनि ‘पाणिनि’ के पूर्ववर्ती या समकालीन शाकल्यऋषि ने वृत्त के 360 अंशों की चर्चा की है और ‘ज्या’ का मान बतलाया है। इससे यह सिद्ध होता है कि शून्य अंक भारतवर्ष में बहुत पहले ज्ञात हो चुका था। शून्य के ज्ञान के बिना वृत्त और उसके अंश की परिकल्पना नहीं की जा सकती थी। शून्य के महत्त्व को हम कुछ बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं-

- शून्य आकाश की तरह व्यापक और उत्पादक है।
- शून्य एक निष्क्रिय गणित प्रक्रिया है जो अंकों की अनन्त सक्रियता को रूपायित करता है।
- शून्य से ही सारे अंक निकले हैं।
- शून्य वैदिक ज्ञान-विज्ञान की कुक्षी से अवतरित हो कर वैश्विक गणित प्रक्रिया को जन्म देता है।
- शून्य एक ऐसा बिन्दु है जिससे सिन्धु बनता है।
- शून्य दर्शन (वैदिक) और गणित दोनों का वर्ण्य विषय है।
- शून्य विश्व की आकृति का परिचायक है चाहे उसका स्वरूप बिन्दु की तरह हो या वृत्त की तरह।
- ‘शून्य आकाश का वाचक है और रेखा पृथ्वी का’ शून्य और रेखा यानि आकाश और पृथ्वी के महामिलन से अंकों की उत्पत्ति हुयी।

भारतीय अंक और अंग्रेजी अंक का अन्तर-

भारतीय अंक और अंग्रेजी अंक के सैद्धान्तिक अन्तर को समझना आवश्यक है। यद्यपि भारतवर्ष का ही अंक (गणित) अरब और यूरोप में धीरे धीरे हजार बारह सौ वर्षों में व्यवसाय के माध्यम से पहुँचा था तथापि अंक संकेत में फेर बदल भी कालान्तर में हो गया।

भारतीय अंक	१	२	३	४	५	६	७	८	९
अंग्रेजी अंक	1	2	3	4	5	6	7	8	9

भारतीय अंक में एक की उत्पत्ति आज भी शून्य को दर्शा रही है; जबकि अंग्रेजी अंक एक रेखा मात्र को दिखा रहा है। भारतीय अंकों में 4, 5, 7 और 9 ऊर्ध्वगामी हैं; जबकि अंग्रेजी अंक का 4, 5 समानान्तरगामी और 9 अधोगामी है। 7 भी अधोगामी है। भारतीय अंक 4, 5 अधः से ऊर्ध्व चेतना को रेखांकित करता है।

अंकों की समानता-

भारतीय 6 अंक तथा 3 अंक से अंग्रेजी के 6 एवं 3 अंक संपूर्णतः मेल खाते हैं। अंग्रेजी अंकों में

सर्वथा दुर्गति 7 और 9 की है। ये सूक्ष्म स्तर पर हानिकारक तथा अशुभ हो गये हैं। इनका प्रयोग किसी शुभकार्य में नहीं किया जा सकता है।

गणितीय संक्रियाओं से प्रथम प्रकार के शून्य की उपलब्धि-

सर्वप्रथम 628 ई. के महान गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त ने गणितीय संक्रियाओं द्वारा इस प्रथम अभावरूप शून्य को उपलब्ध करने का प्रकार बताया है-

धनयोर्धनमृणमृणयोर्धनर्णयोरन्तरं समैक्यं खम्¹⁶।

अर्थात् दो समान धन संख्याओं में से एक धन संख्या का अन्तर, दो समान ऋण संख्याओं में से एक ऋण संख्या का अन्तर तथा क्रमशः धन, ऋण चिह्न वाली दो समान संख्याओं के योग का परिणाम 'ख' अथवा शून्य होता है। इस प्रकार-

$$+ 5 - (+ 5) = 0$$

$$- 5 - (- 5) = 0$$

$$+ 5 + (- 5) = 0$$

यह शून्य अन्य संख्याओं के साथ गणितीय संक्रिया द्वारा अनेक परिणाम उपस्थित करता है। ब्रह्मगुप्त के पश्चात् त्रिशतिकार श्रीधराचार्य ने गुणन की संक्रियाओं द्वारा इस प्रकार के शून्य को प्राप्त करने का यह उपाय बताया है-

खस्य गुणनादिके खं संगुणने खेन च खमेव¹⁷।

अर्थात् शून्य को किसी राशि से गुणा इत्यादि करने पर या शून्य से किसी राशि को गुणित करने पर परिणाम शून्य ही होता है। इस प्रकार उन्होंने दो परिस्थितियों की संकल्पना की है तथा उन दोनों से एक ही परिणाम प्राप्त किये हैं-

$$0 \times 5 = 0 \text{ तथा } 5 \times 0 = 0$$

कालान्तर में भास्कराचार्य जी ने भी ब्रह्मगुप्त तथा श्रीपति आदि आचार्यों का अनुसरण करते हुए स्वरचित बीजगणित तथा लीलावती में शून्य को संबोधित किया है-

खहारो भवेत्, खेन भक्तश्च राशिः।¹⁸

खभाजितो राशि खहरः स्यात्।¹⁹

अर्थात् ख या शून्य से विभाजित राशि खहर या अनन्त या परम महान् होती है। इस प्रकार यहाँ अनन्त को खहर यह अन्वर्थ पारिभाषिक नाम दिया है।

लीलावती के टीकाकार रंगनाथ आदि ने इसकी उपपत्ति यह बताई यह है कि किसी भी संख्या को अल्प, अल्पतर, अल्पतम से भाग देने पर उसका भागफल क्रमशः महत्, महत्तर, महत्तम होता है। अतः परमाल्प माने जाने वाले शून्य से भाग का परिणाम अवश्य ही परम महान् होगा, जो कि अनन्त है²⁰।

शोध आलेख का परिणाम-

वैदिक ज्ञान समृद्धि में न्यूनता और अपूर्णता खोजने वाले इतिहासकारों के द्वारा यह घोषित करना कि

‘शून्य बहुत बाद में खोजा गया’ एक मूर्खतापूर्ण विद्वेषभाव का परिचायक है। भारतवर्ष में अंकों की परम्परा वैदिक ज्ञान की धारा से ही पुष्ट हुयी है। अंकों का सनातन संस्कृति में इतना समादर है कि ये ब्रह्म, रुद्र, विष्णु, शक्ति आदि के अर्थ में भी रुढ़ हो गये। अपने अंकों को बचाना, उन्हें जीवित रखना अपनी संस्कृति को जीवित रखने के तुल्य है। प्रस्तुत शोध आलेख में अंकों की महत्ता बतलाते हुए विशेष रूप से ‘शून्य की महत्ता’ को बताने का प्रयास किया गया है, जिसे आम जनमानस नगण्य समझता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अथर्व वेद- 14.2.19
2. शून्यता सर्वदृष्टीनां प्रोक्ता निस्सरणं जिनैः- मध्यमक शास्त्र- अध्याय-13, श्लोक-8
3. येषां तु शून्यता दृष्टिस्तानसाध्यान् बभाषिरे- मध्यमक शास्त्र- 13.8
4. शुनः सम्प्रसारणं वा च दीर्घत्वम् 01- पारस्कर सूत्र- 5.1.12 पर गणवार्तिक
5. असदेवेदमग्र आसीत्। तत्सदासीत्, तत्समभवत्, तदाण्डं निरवर्तत, तत्संवत्सरस्य मात्रामशयत, तन्निरभिद्यत, ते अण्डकपाले रजतं सुवर्णं चाभवताम्। तद्यद्रजतं सेयं पृथिवी, यत्सुवर्णं सा द्यौः॥- छान्दोग्य उपनिषद्- 3.19
6. निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशलिङ्गम्- वैशेषिक सूत्र- 2.1.20
7. स्पर्शवतां संचारो निष्क्रमणं च शून्यात्मकमाकाशं विनाऽनुपपद्यमानमाकाशनामकं द्रव्यान्तरमनुमापयति।- वैशेषिक सूत्र- 2.1.20 पर विवृति।
8. Infinity is the greatest number which is greater than that greatest number which you can choose.
9. विभवान्महानाकाशस्तथा चात्मा- वैशेषिक सूत्र- 7.1.22
10. बृहदारण्यक उपनिषद्- 5.1.1
11. आकाशं गगनं शून्यमम्बरं खं नभो वियत्- गणितसार संग्रह।
12. रूपं शून्यम्। द्विः शून्ये- पिंगल छन्दः सूत्र- अध्याय- 8, श्लोक 29-30
13. यथैका रेखा शत स्थाने शतं दशस्थाने दशैका च एक स्थाने- योग सूत्र- अध्याय 3, श्लोक 13 पर व्यासभाष्य।
14. दशन् ten is traced to be दस् to be exhausted, so called because after ten the numbers are generally only the repetitions of the previous numbers- The Etymologies of Yaska, Page 24.
15. खे अराँ इव खेदया- ऋग्वेद- 8.77.3
16. ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त- 18.30, लेखक- ब्रह्मगुप्त
17. लीलावती- वर्गादौ खम्, शून्य परिकर्म, श्लोक- 1, लेखक- भास्कराचार्य
18. बीजगणित- मूल लेखक- आचार्य भास्कर, श्लोक- 4
19. लीलावती- मूल लेखक- आचार्य भास्कर, टीका- आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय, शून्य परिकर्म, श्लोक संख्या- 1
20. Footnote on the Lilawati- by H.C. Banarji - Rangnath affirms that it is infinite, because the smaller the deviser is, the greater is the quotient, now cipher, being the utmost degree small, gives a quotient infinitely great.

सहायक ग्रन्थ सूची

1. लीलावती, मूल लेखक- भास्कराचार्य, टीकाकार- आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय/आचार्य लषण लाल झा, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
2. बीजगणित, मूल लेखक- भास्कराचार्य, टीकाकार- आचार्य बलदेव मिश्र, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण- 2001
3. ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, मूल लेखक- ब्रह्मगुप्त, टीकाकार- सुधाकरद्विवेदी, मेडिकल हॉल प्रेस, वाराणसी, 1902
4. गणित शास्त्र के विकास की भारतीय परम्परा, डॉ. सुद्युम्न आचार्य, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, वाराणसी, संस्करण- 2006
5. The Etymologies of Yaska, Yaska, Motilal banarsidas, New Delhi
6. Geometry in Ancient and Medieval India, T.A. Sarswati Amma, Motilal banarsidas, New Delhi
7. Partattvaganitadarsanam, G.S. Murti, Motilal banarsidas, New Delhi
8. श्रीमद्भागवतमहापुराण, मूल लेखक- वेदव्यास, गीता प्रेस
9. ईशादि नौ उपनिषद्, व्याख्याकार- हरिकृष्णदास गोयन्दका, गीता प्रेस

असिस्टेंट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी